6

नये नियम के अधीन सच्ची आराधना

हमने जाना है कि यहूदियों द्वारा मूर्तियों की पूजा करना और आराधना में मूर्तिपूजकों के तरीकों का इस्तेमाल करना, परमेश्वर को अस्वीकार्य था। बाइबल का परमेश्वर ईर्ष्या रखने वाला परमेश्वर है (निर्गमन 20:3-5) और अकेला सच्चा परमेश्वर है। केवल उसी की आराधना होनी चाहिए और बह भी उसी के बताए ढंग के अनुसार।

व्यवस्थाविवरण 6:13 और 10:20 को नया रूप देते हुए यीशु ने कहा, ''तू प्रभु अपने परमेश्वर को प्रणाम कर, और केवल उसी की उपासना कर'' (मत्ती 4:10)। अन्य सभी देवता बाहर निकल जाते हैं। आराधकों को केवल परमेश्वर की आराधना करना और उसकी आज्ञा के अनुसार ही करना आवश्यक है। मूसा ने चेतावनी दी थी:

> तुम पराए देवताओं के, अर्थात् अपने चारों ओर के देशों के लोगों के देवताओं के पीछे न हो लेना; क्योंकि तेरा परमेश्वर यहोवा जो तेरे बीच में है वह जल उठनेवाला ईश्वर है; कहीं ऐसा न हो कि तेरे परमेश्वर यहोवा का कोप तुझ पर भड़के, और वह तुझ को पृथ्वी पर से नष्ट कर डाले (व्यवस्थाविवरण 6:14, 15)।

आराधना की सीमाएं

परमेश्वर ने मूसा के द्वारा यह प्रकट किया कि इस्राएली लोग ''उसकी उन सब विधियों और आज्ञाओं पर अपने जीवन भर चलते रहें'' (व्यवस्थाविवरण 6:2)। इस वाक्य का अर्थ है कि उन्हें *सब* बातें माननी आवश्यक थीं यानी परमेश्वर द्वारा दी आज्ञाओं से कम कोई बात नहीं होनी चाहिए थी। उन्हें अपनी पसन्द की बात चुनकर नहीं बल्कि परमेश्वर की व्यवस्था में प्रकट की गई हर आज्ञा को मानना आवश्यक था।

इसके अलावा इस्राएलियों के लिए *केवल* वही मानना आवश्यक था, जिसकी परमेश्वर ने आज्ञा दी थी। ''इसलिए तुम अपने परमेश्वर यहोवा की आज्ञा के अनुसार करने में चौकसी करना; न तो दहिने मुड़ना और न बांए'' (व्यवस्थाविवरण 5:32)। यहां ''अनुसार'' शब्द का अर्थ ''केवल'' है। उन्हें केवल वही करना था, जिसकी आज्ञा परमेश्वर ने दी थी। इस्राएलियों को यह संदेश कई बार दोहराया गया था और इस्राएल के राजाओं को भी बताया गया था (व्यवस्थाविवरण 17:20; 28:14; यहोशू 1:7; 23:6; नीतिवचन 4:27)।

उन्हें परमेश्वर की आज्ञाओं में जोड़ने या उनमें से निकालने की अनुमति नहीं थी। ''जो आज्ञा मैं तुम को सुनाता हूं उस में न तो कुछ बढ़ाना, और न कुछ घटाना; तुम्हारे परमेश्वर यहोवा की जो

जो आज्ञा मैं तुम्हें सुनाता हूं उन्हें तुम मानना'' (व्यवस्थाविवरण 4:2; 12:32; नीतिवचन 30:6 भी देखें)।

परमेश्वर ने स्पष्ट बताया कि लोगों को उसकी आज्ञाओं में जोड़ने या उनमें से निकालने की अनुमति नहीं है। इसका कारण यह सुनिश्चित करना था कि उसकी आज्ञाएं मानी जाएं (व्यवस्थाविवरण 4:2)। परमेश्वर की आज्ञाओं में किसी भी प्रकार का जोड़ना परमेश्वर की आज्ञाएं नहीं बल्कि मनुष्यों की प्राथमिकताएं होना था। यदि कोई उन जोड़ी गई बातों को मानता तो इसका अर्थ यह था कि वह परमेश्वर की आज्ञाओं को नहीं मान रहा है। परमेश्वर की आज्ञाओं में से निकालने का अर्थ था कि जो परमेश्वर चाहता था उसे पूरा नहीं किया गया, जिसका अर्थ यह था कि परमेश्वर की आज्ञा नहीं मानी गई।

नई वाचा के अधीन लोगों को यीशु ने यही नियम बताया। अपने अनुयायियों से उसने कहा कि उसके चेले बनने वालों को ''सब बातें जो मैं ने तुम्हें आज्ञा दी है, मानना सिखाओ'' (मत्ती 28:20)। उसने कहा कि कोई प्रकाशितवाक्य की पुस्तक में न कुछ जोड़े और न निकाले (प्रकाशितवाक्य 22:18, 19)। कइयों का कहना है कि यह बात केवल प्रकाशितवाक्य पर लागू होती है। संदर्भ में देखें तो यह बात सही है, पर क्या परमेश्वर को बाइबल की अन्य पुस्तकों के बजाय केवल उसी पुस्तक का ध्यान है? क्या प्रकाशितवाक्य की पुस्तक में जोड़ना और इसमें से कुछ निकालना गलत है पर बाइबल की किसी और पुस्तक में जोड़ना या उसमें से निकालना सही?

''सुसमाचार'' के बारे में, जिसमें मसीही नियम भी होने आवश्यक हैं (1 तीमुथियुस 1:9-11) पौलुस ने लिखा कि कोई और सुसमाचार बताने वाले शापित हैं (गलातियों 1:8, 9)। यूहन्ना ने इस मामले पर यह लिखते हुए बात की कि ''जो कोई आगे बढ़ जाता है, और मसीह की शिक्षा में बना नहीं रहता, उसके पास परमेश्वर नहीं: जो कोई उसकी शिक्षा में स्थिर रहता है, उसके पास पिता भी है, और पुत्र भी'' (2 यूहन्ना 9)। यीशु ने कहा कि परमेश्वर की आराधना करने वालों के लिए उसकी आराधना ''आत्मा और सच्चाई से'' (यूहन्ना 4:24) करनी *आवश्यक* है। परमेश्वर ने सीमाएं ठहरा दी हैं और जो लोग उद्धार पाने के इच्छुक हैं, उनके लिए उन सीमाओं में रहना आवश्यक है (इब्रानियों 5:9)। यही बात उन लोगों के लिए है, जो उसकी आराधना सही ढंग से करना चाहते हैं।

जो लोग आराधना में ऐसी बातें लेकर आते हैं, जिनका परमेश्वर ने उल्लेख नहीं किया, उनके कहने का अभिप्राय यह होता है कि परमेश्वर ने सब कुछ प्रकट नहीं किया है कि आराधना में कैसी होनी चाहिए। ऐसा व्यवहार परमेश्वर के प्रकाशन की सम्पूर्णता का इनकार करता है।

सच्चाई से आराधना

नई वाचा के अधीन आराधना उस सच्चाई के अनुसार होनी आवश्यक है, जो यीशु ने प्रकट की। याकूब के कुएं पर यीशु से भेंट करने वाली सामरी स्त्री ने आराधना किए जाने के स्थान के विषय में पूछा था। सामरी लोग गिरिज्जीम पहाड़ पर आराधना करते थे, पर यहूदी लोग यरूशलेम में आराधना करते थे।

यीशु ने ध्यान दिलाया कि यरूशलेम में की जाने वाली आराधना सही थी। यहूदी लोगों की

परम्पराओं के सम्बन्ध में सामरियों की आराधना के विषय में उसने कहा,''तुम जिसे नहीं जानते, उसकी आराधना करते हो; और हम जिसे जानते हैं उसकी आराधना करते हैं; क्योंकि उद्धार यहूदियों में से है'' (यूहन्ना 4:22)। जल्द ही एक बदलाव होने वाला था, जब सच्चे आराधकों ने ''आत्मा और सच्चाई से'' आराधना करनी थी (यूहन्ना 4:23, 24)। आराधना आत्मा और सच्चाई से होनी ''आवश्यक'' है। किसी विकल्प की अनुमति नहीं है। इसका अर्थ स्पष्ट है कि सामरी लोग सच्चे आराधक नहीं थे। वे उसी परमेश्वर को मानते थे, जिसे यहूदी मानते थे, पर वे आराधना गलत जगह पर कर रहे थे। यूहन्ना 4:21-24 सिखाता है कि ...

- परमेश्वर की जाने वाली हर आराधना को स्वीकार नहीं करता। स्त्री से कही गई यीशु की बात पता से चलता है कि सामरी लोग बेशक आराधना करते थे, पर उनकी आराधना सही नहीं थी।
- परमेश्वर केवल आराधना से कुछ अधिक चाहता है। सामरी लोग परमेश्वर की आराधना करते थे पर यह सब अज्ञानता में करते थे, क्योंकि वे ''जिसे नहीं जानते [थे]'' उसकी आराधना करते थे। उनकी आराधना गलत थी।
- यहूदी आराधना अब आराधना का तरीका नहीं। यरूशलेम जिसे व्यवस्था के अधीन परमेश्वर की पसन्द का आराधना का स्थान ठहराया गया था अब वह आराधना करने का स्थान नहीं है।
- उस समय में जिसके बारे में यीशु ने कहा कि आने वाला है, अर्थात मसीही युग में परमेश्वर केवल आत्मा और सच्चाई से की गई आराधना स्वीकार करता है।

यह कैसे पता चलता है कि यह सच्चाई है? सच्चाई यीशु के द्वारा प्रकट की गई है (यूहन्ना 1:14, 17)। यीशु की शिक्षाओं में बने रहकर हम ''सच्चाई को जान'' सकते हैं (यूहन्ना 8:32)। परमेश्वर की ओर से होने के कारण यीशु की बातें (यूहन्ना 7:16; 12:49, 50; 14:24ख; 17:8) सच्चाई हैं (यूहन्ना 17:17)। जो सच्चाई के हैं वे यीशु की आवाज़ सुनते हैं (यूहन्ना 18:37) क्योंकि सच्चाई, ''यीशु में'' है (इफिसियों 4:21)।

फिर हम देखते हैं कि यीशु ने सच्चाई लाई और सच्चाई उसमें है; यह सच्चाई परमेश्वर का वचन है। इसके अलावा आत्मा के द्वारा सारी सच्चाई प्रकट कर दी गई है। इसलिए आराधना में हम जो कुछ भी करते हैं वह यीशु द्वारा बताई गई सच्चाई तक सीमित है। अब आराधना व्यवस्था की शिक्षा के अनुसार नहीं होती। हम सच्चाई को तभी जान सकते हैं यदि हम यीशु के वचनों में बने रहें।

व्यवस्था के अनुसार नहीं

नये नियम की आराधना व्यवस्था पर आधारित नहीं है। मूसा ने व्यवस्था दी थी जबकि यीशु अनुग्रह और सच्चाई (यूहन्ना 1:17) लाया। वह सच्चाई मसीही आराधना पर लागू होती है। बेशक सच्चाई मूसा के द्वारा नहीं आई, पर उसकी शिक्षा गलत नहीं थी। मूसा ने यीशु द्वारा लाई जाने वाली सच्चाई का नमूना अर्थात उसकी परछाई पेश की। ''क्योंकि व्यवस्था ... आने वाली अच्छी वस्तुओं का प्रतिबिम्ब है, पर उनका असली स्वरूप नहीं'' (इब्रानियों 10:1क)। व्यवस्था

की बातें ''स्वर्ग में की वस्तुओं के प्रतिरूप और प्रतिबिम्ब'' थीं (इब्रानियों 8:5)। इस कारण मसीही लोग अपनी आराधना का आधार पुराने नियम की शिक्षा और उसकी बातों को नहीं बनाते। यदि मसीही आराधना व्यवस्था पर आधारित होती तो आज की आराधना में पशुओं के बलिदान आवश्यक होते।

यीशु के बलिदान ने पापों की क्षमा के लिए पशुओं के प्रतिरूप बलिदान को पूरा कर दिया। बाइबल कहती है कि व्यवस्था को पूरा कर दिया गया है या मिटा दिया गया है (इफिसियों 2:14, 15)। इसलिए बलिदानों सहित व्यवस्था के अधीन की जाने वाली आराधना के रूपों को मिटा दिया गया है।

नये नियम के अधीन लोगों का न्याय यीशु की शिक्षा के द्वारा होगा (यूहन्ना 12:48)। यीशु की शिक्षा व्यवस्था के अधीन रहने वालों का न्याय नहीं करेगी। उनका न्याय व्यवस्था के आधार पर होगा। ''जिन्होंने व्यवस्था पाकर पाप किया, उनका दण्ड व्यवस्था के अनुसार होगा'' (रोमियों 2:12ख)।

व्यवस्था के अधीन रहने वालों के लिए न्याय का मानक उनसे अलग होगा, जो व्यवस्था के अधीन नहीं हैं। व्यवस्था का इस्तेमाल केवल उनका न्याय करने के लिए किया जाएगा जो इसके अधीन रहें। इससे उनका न्याय नहीं होगा जो व्यवस्था दिए जाने से पहले के लोगों, व्यवस्था के दौरान रहने वाले अन्यजातियों (रोमियों 2:14) या व्यवस्था के मिटाए जाने के बाद रहने वाले का न्याय इससे नहीं होगा (इब्रानियों 10:9)।

यीशु के अनुयायियों को आराधना के लिए उसकी ओर देखना चाहिए। व्यवस्था के अधीन की जाने वाली आराधना की बातें मसीही लोगों पर लागू नहीं होती हैं। उनके न्याय का आधार यीशु के वचन (यूहन्ना 12:48) होंगे, न कि व्यवस्था।

व्यवस्था में नये नियम की आराधना की आत्मिक वास्तविकताओं की भौतिक परछाइयां थीं। नई वाचा के अधीन आराधना आत्मा से होने के अलावा सच्चाई से भी होनी आवश्यक है। पशुओं के बलिदानों की जगह मसीही लोगों से उम्मीद की जाती है कि ''ऐसे आत्मिक बलिदान चढ़ाएं, जो यीशु मसीह के द्वारा परमेश्वर को ग्राह्य हैं'' (1 पतरस 2:5ख)।

हमें ''लेख की पुरानी रीति पर नहीं, बरन आत्मा की नई रीति पर सेवा'' करनी आवश्यक है (रोमियों 7:6; देखें 2:29; 2 कुरिन्थियों 3:6; फिलिप्पियों 3:3)। ''इसलिए हम उसके द्वारा स्तुतिरूपी बलिदान अर्थात उन होंठों का फल जो उसके नाम का अंगीकार करते हैं, परमेश्वर के लिए सर्वदा चढ़ाया करें'' (इब्रानियों 13:15)।

विवेक के अनुसार नहीं

वर्षों से आराधना में ऐसी बातों का इस्तेमाल किया जाता है, जिनकी आज्ञा यीशु द्वारा नहीं दी गई, इसलिए कई लोगों को उनका इस्तेमाल सही लगता है। वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यदि उनके विवेक को कोई परेशानी नहीं है, तो उनकी आराधना में कोई बुराई नहीं है।

''विवेक'' के लिए अंग्रेजी शब्द ''conscience'' लातीनी भाषा के *con* जिसका अर्थ ''साथ'' और *science* जिसका अर्थ ''ज्ञान'' है, लिया गया है जो ''ज्ञान के साथ'' के अर्थ वाले यूनानी शब्द *suneidesis* का समानार्थक है। विवेक, जो हमारा व्यक्तिगत न्यायिक प्रबन्ध है, उस

ज्ञान पर आधारित है, जो हमारे पास है। यदि किसी का विवेक अच्छा है, तो यह उसे स्वीकृति दे देगा जो इसे लगता है कि सही है और उसे उस सही प्रतीत होने वाली जानकारी के आधार पर निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करेगा। यदि किसी का विवेक अच्छा नहीं है तो यह लगने पर भी कि जो उसने किया है, वह गलत है, या अपनी पूर्वधारणाएं पूरी करने के लिए तथ्यों को बिगाड़ने पर भी उसे कोई दिक्कत नहीं होगी।

पौलुस को लगता था कि उसे मसीही लोगों को मार डालना चाहिए। व्यवस्था यही कहती थी कि परमेश्वर के अलावा किसी अन्य देवता की उपासना करने वाले इस्राएलियों को मार डाला जाए (निर्गमन 22:20; व्यवस्थाविवरण 17:2-5)। पौलुस ने यीशु की आराधना करने वालों को अच्छे विवेक से ही मारा (प्रेरितों 23:1; 24:16), क्योंकि उसे लगा (प्रेरितों 26:9) कि वे किसी अन्य देवता की उपासना कर रहे हैं।

यदि हमें लगे कि हम सही कर रहे हैं, चाहे हम परमेश्वर की आज्ञा ही क्यों न तोड़ रहे हों, तो हमारा विवेक हमें परेशान नहीं करेगा। यदि हमारी सोच की अगुआई परमेश्वर के वचन से होती है, और जो यह कहता है हम उसे मानते हैं तो उसका परिणाम परेशानी रहित विवेक होगा। हमारा विवेक हमें तभी परेशान कर सकता है यदि यह मानते हुए कि जो कुछ हम कर रहे हैं, उसमें कुछ गड़बड़ है, सही काम करते हैं। बुरा विवेक ऐसे व्यक्ति को परेशान नहीं करेगा, जिसे मालूम है कि उसका जीवन उस सच्चाई के विपरीत है, जिसे वह जानता है। अपने विवेक से किसी काम के सही होने का न्याय करने के बजाय हमें अपने मानक के रूप में परमेश्वर के वचन का इस्तेमाल करना चाहिए (1 यूहन्ना 4:1, 6)।

मनुष्यों की रीतियों के अनुसार नहीं

रीति (यू.: *paradosis*) आगे दी गई शिक्षा या प्रथा को कहते हैं। यह तय करने के लिए कि कोई रीति सही है या गलत तीन परीक्षाएं सहायक हो सकती हैं: (1) इसे देने वाला कौन है? (2) क्या यह परमेश्वर की शिक्षा में जोड़ती है या उससे निकालती है? (3) क्या यह प्रथा उस दायरे में हैं, जहां परमेश्वर ने एक पसन्द रखी है?

रीति के देने वाला महत्वपूर्ण है। यदि कोई रीति या परम्परा परमेश्वर की ओर से है तो हमें उसे मानना आवश्यक है। यदि कोई परम्परा मनुष्यों की ओर से है तो हम उसे तभी मान सकते हैं यदि यह परमेश्वर की पसन्द के दायरे में कोई प्रथा न जोड़ती हो।

मनुष्यों की आज्ञाओं और परम्पराओं के सम्बन्ध में यीशु ने शास्त्रियों और फरीसियों से कहा:

> ''तुम भी अपनी रीतियों के कारण परमेश्वर की आज्ञा क्यों टालते हो?'' (मत्ती 15:3)

> ''और ये व्यर्थ मेरी उपासना करते हैं, क्योंकि मुनष्यों की आज्ञाओं को धर्मोपदेश करके सिखाते हैं। क्योंकि तुम परमेश्वर की आज्ञा को टालकर मनुष्यों की रीतियों को मानते हो। ...''
>
> ... तुम अपनी रीतियों को मानने के लिए परमेश्वर की आज्ञा कैसे अच्छी तरह टाल देते हो! ... इस प्रकार तुम अपनी रीतियों से, जिन्हें तुम ने ठहराया है, परमेश्वर का वचन

टाल देते हो; और ऐसे-ऐसे बहुत से काम करते हो (मरकुस 7:7-13)।

पौलुस ने लिखा, ''चौकस रहो कि कोई तुम्हें उस तत्व-ज्ञान और व्यर्थ धोखे के द्वारा अहेर न कर ले, जो मनुष्यों के परम्पराओं और संसार की आदि शिक्षा के अनुसार तो है, पर मसीह के अनुसार नहीं'' (कुलुस्सियों 2:8)। उसने तीतुस को प्राचीनों से यह कहने के लिए लिखा कि वे ''यहूदियों की कथा कहानियों और उन मनुष्यों की आज्ञाओं पर मन न लगाएं, जो सत्य से भटक जाते हैं'' (तीतुस 1:14)।

मसीही लोगों का लक्ष्य यीशु के पीछे चलना है। हमें मनुष्यों की उन प्रथाओं से बचना चाहिए जो परमेश्वर की शिक्षा में नहीं मिलती हैं।

परमेश्वर की रीतियां ऐसी प्रथाएं हैं, जो प्रेरितों और नई वाचा के भविष्यवक्ताओं के द्वारा यीशु से मिली हैं (इफिसियों 2:20; 3:5)। यही वे रीतियां हैं, जिन्हें मानना हमारे लिए आवश्यक हैं (1 कुरिन्थियों 11:1; 2 थिस्सलुनीकियों 2:15; 3:6)।

मनुष्यों की परम्पराएं यदि परमेश्वर की पसन्द से उलझती हैं तो वे गलत हैं। यदि परमेश्वर ने अपनी कोई पसन्द नहीं बताई है तो वे न तो सही हैं और न गलत। हम उन प्रथाओं को अपनी समझ के अनुसार मान सकते हैं। बपतिस्मा एक अच्छा उदाहरण है। बपतिस्मे में हम ''गाड़े'' जाते हैं (रोमियों 6:4; कुलुस्सियों 2:12)। यदि हम ''डुबकी'' लेते हैं तो हम बिल्कुल वही कर रहे हैं, जो परमेश्वर ने चुना है। इसकी जगह छिड़काव करना मनुष्य की परम्पराओं को जोड़ना है, जो परमेश्वर की पसन्द से अलग होने के कारण उसे स्वीकार्य नहीं है। गाड़े जाने का एक परम्परागत ढंग व्यक्ति को पानी में पीछे की ओर झुका कर डुबोना है। परम्परा के रूप में यह स्वीकार्य है, परन्तु यदि किसी को पानी में आगे की ओर, टेढ़ा या किसी और ढंग से डुबोया जाता है तो वह भी सही है।

परम्परा देने वाले का महत्व है। यदि परम्परा परमेश्वर की ओर से है तब इसे मानना सही है। मनुष्यों की परम्परा को मानना गलत है, जब तक यह परमेश्वर की पसन्द के किसी क्षेत्र में उल्लंघन न करे।

आत्मा से आराधना

आराधना का केवल तरीका ही सही होना आवश्यक नहीं है बल्कि यह आत्मा से भी होनी चाहिए। परमेश्वर केवल होंठों की हलचल और संगीत को *ही नहीं* देखता और सुनता, बल्कि वह मन के संगीत को भी सुनता है। जब तक मनुष्य के मन से न निकले तब तक आराधना का एक क्षण बाहरी हलचल और हाव-भाव से नहीं बनता। आराधना सच्चाई से होनी ''आवश्यक'' है, परन्तु यह आत्मा से भी होनी ''आवश्यक'' है (यूहन्ना 4:23, 24)। आराधना की बातें भी जिनमें केवल वही किया जाए जिनकी परमेश्वर ने आज्ञा दी है, आत्मा के न होने से बेकार है।

यदि परमेश्वर केवल मीठे सुरों को ही चाहता तो पेशेवर संगीत, प्रार्थनाएं और प्रवचन इकट्ठे होने की जगह बजाए जा सकते थे। यदि परमेश्वर आत्मा से की जाने वाली आराधना में दिलचस्पी न लेता तो मण्डली घर में बैठकर दूसरों को देख सकती थी।

परमेश्वर हमारी बाहरी अभिव्यक्तियों को चाहता है, परन्तु इससे भी बढ़कर वह इसमें हमारे मनों को भी चाहता है। पौलुस ने लिखा कि आराधना में मसीही लोग ''आपस में भजन और

स्तुतिगान और आत्मिक गीत गाया करो, और अपने-अपने मन में प्रभु के साम्हने गाते और कीर्तन करते रहो'' (इफिसियों 5:19)। हमारी गतिविधियां तभी स्वीकार्य हैं यदि हम परमेश्वर के पास अपने दिल की गहराइयों से आते हैं; वरना हमारे सब प्रयास बेकार और खोखले हैं।

यीशु के लिए अपने प्रेम को हम उसकी आज्ञाएं मानकर दिखा सकते हैं (यूहन्ना 14:15, 21-23)। उसने अपने प्रेरितों को बताया कि चेले बनने वालों को वे सब बातें मानना सिखाएं, जिनकी उसने आज्ञा दी (मत्ती 28:20)।

हमारा उसकी सब आज्ञाओं को मानने का क्या अर्थ है? (1) हम उसकी *सब* आज्ञाओं का पालन करेंगे, यानी कोई आज्ञा बिना माने नहीं रहेगी। (2) हम उससे *अधिक* नहीं करेंगे, जिसकी उसने आज्ञा दी है। जो उसने आज्ञा दी है, यदि हम उससे कुछ अधिक करते हैं तो हम वह नहीं कर रहे होंगे, जिसकी उसने आज्ञा दी है। (3) जो कुछ उसने आज्ञा दी है हम उससे *कम* नहीं करेंगे। यदि हम कम करते हैं तो हम उसकी सब आज्ञाओं का पालन नहीं कर रहे हैं। (4) जो आज्ञा उसने दी है हम उसे बदलेंगे नहीं। यदि हम इसे बदलते हैं तो हम वह नहीं कर रहे होंगे *जो उसने आज्ञा दी है*।

प्रेरितों ने यीशु की सब आज्ञाओं का पालन करना सिखाकर यीशु की आज्ञा को माना। लूका ने पहली सदी के मयीही लोगों के बारे में लिखा है कि ''वे प्रेरितों से शिक्षा पाने, और संगति रखने और रोटी तोड़ने में और प्रार्थना करने में लौलीन रहे'' (प्रेरितों 2:42)। कलीसिया की आराधना के लिए दिशा निर्देश प्रेरितों की शिक्षा में दिए गए हैं। पौलुस ने मसीही लोगों को समझाया कि ''लिखे हुए से आगे न बढ़ना'' (1 कुरिन्थियों 4:6)।

सारांश

सच्ची आराधना परमेश्वर द्वारा ठहराए मापदंडों के अनुसार होनी आवश्यक है। वह हमसे उम्मीद करता है कि हम आत्मा और सच्चाई से उसकी आराधना करें। हम उसमें से जो उसने आज्ञा दी है, न जोड़ सकते हैं और न निकाल सकते हैं बल्कि हमें चाहिए कि हम अपने आपको उस आराधना की साधारण खूबसूरती में सीमित करें। हमें परमेश्वर की आराधना उसकी महिमा करने के लिए करनी चाहिए न कि लोगों को प्रभावित करने के लिए।